शिक्षा में मूल्य चिंता

❑ कप्तान सिंह सोलंकी

इधर की राष्ट्रीयता बनाम क्षेत्रीय परिघटनाओं ने शिक्षा में मूल्य-चिंता को फिर से बढ़ा दिया है । एक तरफ मीडिया द्वारा प्रसारित पाश्चात्य संस्कृति ने राष्ट्रीय अस्मिता की आवाज को बुलंद किया है तो दूसरी ओर उभरती सामुदायिकता का निजी पहचान पर दबाव है । ऐसे में समाज की परंपरागत मूल्य-संरचना में दरारे दिखने लगी हैं । मौजूदा मूल्य-चिंता में दो अतिरेक हैं - एक तो अपनी 'महान संस्कृति की पवित्रता को जस का तस' बनाये रखने की प्रवृत्ति है, दूसरी ओर मूल्य मात्र के प्रति उपेक्षा भाव बरतते हुए बाजारवाद के समक्ष समर्पण है, कि बाजार के सामने कोई सामाजिक मूल्य नहीं टिकता । शिक्षा अतिरेकों में बहने वाली प्रक्रिया नहीं है । ऐसे में मूल्यों को लेकर सिरे से तार्किक और विवेक सम्मत संवाद की जरूरत है ।

शिक्षा मानवीय जीवन का महत्वपूर्ण व आवश्यक पहलू है। यहां तक की कई विद्वान शिक्षा को जीवन की आवश्यकता के रूप में स्वीकार करते हैं । शिक्षा की अवधारणा की व्याख्या लोग विभिन्न तरीकों से विभिन्न अर्थों में करते रहे हैं । शिक्षा मूलत: सीखने-सिखाने की प्रक्रिया है । यह प्रक्रिया सतत् रूप से चलती रहती है । किसी भी प्रकार की प्रक्रिया को शिक्षा कह देना ठीक नहीं होगा । ऐसी स्थिति में शिक्षा के उद्देश्य एवं सिद्धांतों का प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है । एक शिक्षित समाज में विचारों के आदान-प्रदान, आलोचना-समालोचना की अधिक संभावनाएं हो सकती हैं वनिस्पत अशिक्षित समाज के । लोकतंत्र जैसी प्रणाली में तो शिक्षा को आवश्यक शर्त के रूप में स्वीकार किया जाना जरूरी है क्योंकि शिक्षित व्यक्ति ही नियम बनाने, नीतियों की आलोचना करने, निर्णयों में ठीक प्रकार से भागीदारी करने की भूमिका निभा सकता है ।

शिक्षा की मौजूदा परिस्थिति सामाजिक जीवन के विभाजनों, अलगाव और पृथकताओं को प्रतिबिम्बित करती है । लोकतांत्रिक सामाजिक समूहों में शिक्षा का यह काम हो जाता है कि वह अलगाव के विरुद्ध संघर्ष करे ताकि विभिन्न अभिरुचियां एक दूसरे को दृढ़ता प्रदान कर सकें । साथ ही सतत् संवादकी प्रक्रिया को आगे बढ़ायें।

शिक्षा सोद्देश्य कर्म है क्योंकि यह जानबूझ कर किया जाता है। फिर भी उद्देश्य दिशा तय करने के लिए जरूरी हैं । यदि हम गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा की बात करें तो शिक्षा के उद्देश्यों के बिना उसे परिभाषित कर ही नहीं सकते । इस प्रसंग में मैं महान शिक्षाविद् जीन पियाजे के विचारों को उद्धत करना चाहूंगा जिन्हें हाल ही में शिक्षा जगत ने खो दिया है :

> *''शिक्षा का सैद्धांतिक लक्ष्य ऐसे इंसान का निर्माण करना है जो नया कार्य करने के काबिल बने न कि अन्य पीढियों द्वारा किये गये कार्यों को दोहराता रहे क्योंकि मनुष्य खोजकर्ता, आविष्कार कर्ता व सृजनकर्ता है । शिक्षा का ध्येय ऐसे मस्तिष्क की संरचना करना है जो समालोचनात्मक हो सके । जो तार्किकता के आधार पर निर्णय ले सके । जो हर चीज को यों ही स्वीकार न कर ले । वह स्वीकार करने के कारण भी दे और उसे सत्यापित भी कर सके।''*

शिक्षा का व्यापक उद्देश्य शिक्षार्थियों में ऐसी क्षमताओं के विकास को सुनिश्चित करना होना चाहिए जिनसे वह सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भौतिक जगत में स्व निर्देशित विचार व कर्म के प्रति जिम्मेदारी निभा सके ।

तार्किक, विवेकसंगत निर्णय लेने वाला व्यक्ति भी तभी विकसितहोगा जब उसमें अपने परिवेश और मानवीय जगत की नैतिक समझ विकसित हो रही हो । वह उस जगत के प्रति एवं अन्य जीवों के प्रति संवेदनशीलता का भाव रखता हो ।

आज सबसे बडा खतरा लोकप्रिय नारेबाजी, रूढ़ विचारधाराओं, पूर्वाग्रहों से ग्रसित सोच का है । हममें से प्रत्येक में व्यक्तिगत स्तर पर प्रामाणिक-अप्रामाणिक के बीच अन्तर करने की सामर्थ्य होना जरूरी है । जबकि हमारे विकासशील देश में यह खतरा और अलगाव शिक्षक की शिक्षा को अधूरा, मूल्यहीन और बेकार बनाता है ।

आज सामान्यत: देखने में आता है शिक्षक कक्षा का हीरो (क्लास रुम हीरो) तो बन जाता है परन्तु वह समुदाय का नेतृत्व प्रदान करने वाला उत्प्रेरक नहीं बन पाता। वह समाज में अच्छा करने व परिवर्तन लाने के बजाय सामाजिक बुराइयों से स्वयं भी प्रभावित हो जाता है । जैसे प्रतिस्पर्धा, भ्रष्टाचार, संवेदनहीनता आदि से शिक्षक भी प्रभावित पाये जाते हैं। उसका प्रशिक्षण उसे केवल रोबोट (यांत्रिक मानव) बना देता है जो कक्षा के निर्धारित

कार्यक्रम को पूरा करता है । वह एक विवेकशील इंसान के रूप में वर्ताब नहीं करता जो अच्छे-बुरे, सही-गलत में फर्क महसूस कर सके । और समुदाय को सही मार्ग दिशा दिखा सके ।

शिक्षक प्रशिक्षणों में लुप्त होते मूल्यों के कारण यह एक गंभीर अंतराल आया है । परिणाम स्वरूप युवाओं में स्वयं के प्रति समाज व वातावरण के प्रति अलगाव की-सी स्थिति आ गई है । उनका मस्तिष्क अनिश्चितता, अनिर्णय व उद्देश्यहीनता की स्थिति से पीडित रहता है । उनके क्रियाकलाप भी फिर उद्देश्यहीन अथवा स्वकेन्द्रित रहते हैं ।

1959 में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने मौलाना आजाद स्मृति व्याख्यान में इस संदर्भ में हमें चेतावनी देते हुए आगाह किया था :

''क्या हम विज्ञान व तकनीकी विकास एवं प्रगति को मस्तिष्क व आत्म के विकास से जोड सकते हैं ? हम विज्ञान से विमुख नहीं हो सकते हैं क्योंकि वह आज के जीवन के मूल तथ्यों का प्रतिनिधित्व करता है । क्या हम उन महत्वपूर्ण सिद्धांतों से विमुख हो सकते हैं जिनके लिए हमारा भारत देश समस्त विश्व में सदियों से माना जाता रहा है ? ''

''ऐसा ही कुछ 1972 में यूनेस्को के अंतर्राष्ट्रीय आयोग ने शिक्षा की असमर्थता के बारे में कहा, ''शिक्षा में आधारभूत रूप से उसके विषय और लोगों के जीवनयापन के अनुभव के अन्तर की खाई है । अन्तर उन मूल्यों की रचना (जिन्हें वह सिखाती है) एवं समाज द्वारा निर्धारित लक्ष्य का है । अन्तर इसके पुराने पाठ्यक्रम एवं विज्ञान की आधुनिकता का है ।''

शिक्षा को जीवन से जोडना, ठोस लक्ष्यों से सामंजस्य करना, समाज और अर्थ व्यवस्था के बीच नजदीकी संबंध स्थापित करना शिक्षण विधियों में नई खोजों, नये सिद्धांतों, आसपास की घटनाओं की समझ को समाहित करना, ये भी शिक्षा के लक्ष्य हो सकते हैं।

निश्चित रूप से यही वह जगह है जहां हम हल/उपाय खोज सकते हैं ।

आजकल सरकारी– गैर सरकारी विद्यालयों में देखने को मिलता है कि अलग से नैतिक शिक्षा (मॉरल एज्यूकेशन) दी जा रही है। कक्षा की दीवारों पर नैतिक वाक्य लिखे होते हैं, सदा सत्य बोलो । प्रेम पूर्व व्यवहार करो। किताबों से बच्चों को नैतिकता का पाठ पढ़ाया जाता है और शाला शिक्षक मजे से झूठ बोलता है । बच्चों की पिटाई करता है। उनके साथ अपमानजनक व्यवहार करता है । तो बच्चे तो शाला में प्रयोग किये जाने वाले उन मूल्यों के व्यावहारिक रूप को सीखेंगे, न कि दीवारों के सहारे लगे मूल्यों के चार्टों को, या 'सदा सत्य बोलो' जैसे नैतिक वाक्यों को ।

शिक्षा को समाज की नई आवश्यकता के प्रति पूर्ण जिम्मेदार बनाने के लिए शिक्षक प्रशिक्षणों को अपनी पाठ्यक्रम विषयवस्तु को पुनर्गठित करना पडेगा। लेकिन शिक्षा-दर्शन, शिक्षण-पद्धतियों पर पुनर्विचार के साथ और तद्नुरुप शिक्षाक्रम का भी पुनर्गठन करना होगा ।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में शिक्षण व उसके प्रशिक्षण में सुधार पर बल देते हुए कहा गया था -

''शिक्षक का स्तर समाज की सामाजिक सांस्कृतिक मान्यताओं एवं विचार प्रकृति को दर्शाता है, प्रतिबिम्बित करता है । यह कहा जाता है कि कोई भी व्यक्ति शिक्षक के स्तर का अतिक्रमण नहीं कर सकता । सरकार को ऐसी स्थिति का प्रयत्न/सृजन करना चाहिये जो कि शिक्षक को रचनात्मक एवं सृजनकर्ता की दिशा में प्रेरित, अग्रसर कर सकें । शिक्षक को नया सब कुछ करने, समुदाय की जरूरतों के अनुसार उपयुक्त संप्रेषण एवं शिक्षण विधियों, गतिविधियों के चयन करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए ।''

शिक्षक प्रशिक्षण में कुछ खामियां है जिन्हें बिन्दुबार इस तरह देखा जा सकता है -

- विद्यालय व समुदाय से पृथकता का भाव ।
- यह संकीर्ण दृष्टिकोण एवं सीमित दायरे में सोचने वाले व कक्षा कक्ष में निपुणता वाले शिक्षक तैयार करता है ।
- शिक्षक में शिक्षक व्यवसाय (अभिरुचि) के प्रति सही दृष्टिकोण बनाने में असफल रहा है ।
- पहल तथा नेतृत्व की क्षमताओं, गुणों को हमारे भावी शिक्षकों में ठीक से विकसित नहीं कर पाता है ।
- मानवीय जीवन के मूल्यों की विषयवस्तु का अभाव ।

शिक्षा में मूल्यों का समावेश ऐसी मान्यता है जो शायद शिक्षा के उद्गम से ही उससे जुडी है । जब हम एक या एक से अधिक तरीकों से बच्चों को सिखाने की बात करते हैं, तब भी उस तरीके में निश्चय ही कुछ मूल्य जरुर निहित होते हैं । मूल्यों का सवाल ही संवेदना के कारण उठता है । संवेदना यानी दूसरों के कष्ट को महसूस करना । मेरे कार्य का दूसरों पर क्या प्रभाव पडेगा, यह समझना। कई बार हम सामाजिक जीवन में देखते हैं कि मूल्यों में

टकराहट भी होती है । तब यह समस्या मूल्य रटने से हल नहीं हो जाती बल्कि नैतिक समझ की जरूरत पडती है । आजकल सरकारी- गैर सरकारी विद्यालयों में देखने को मिलता है कि अलग से नैतिक शिक्षा (मॉरल एज्यूकेशन) दी जा रही है । कक्षा की दीवारों पर नैतिक वाक्य लिखे होते हैं, सदा सत्य बोलो । प्रेम पूर्व व्यवहार करो। किताबों से बच्चों को नैतिकता का पाठ पढ़ाया जाता है और शाला शिक्षक मजे से झूठ बोलता है । बच्चों की पिटाई करता है। उनके साथ अपमानजनक व्यवहार करता है । तो बच्चे तो शाला में प्रयोग किये जाने वाले उन मूल्यों के व्यावहारिक रूप को सीखेंगे, न कि दीवारों के सहारे लगे मूल्यों के चार्टों को, या 'सदा सत्य बोलो' जैसे नैतिक वाक्यों को।

स्पष्ट है जिन मूल्यों को शाला शिक्षक और स्थानीय समाज व्यावहारिक जीवन में काम में लेता है, उन्हें बच्चे सहजतापूर्वक सीख लेते हैं । जिन मूल्यों की केवल बात ही की जाये, जिन्हें रटवाया जाय, उन्हें सीखना बच्चों को काफी मुश्किल होगा ।

मूल्य हमारे कर्मों को दिशा देते हैं। क्या करणीय है, क्या नहीं ? इसके निर्णय में खासी अच्छी भूमिका का निर्वाह करते हैं । मूल्यों का आपसी संबंध शुद्ध तार्किक नहीं होता । ये गणितीय अवधारणों की तरह नहीं होते । हमारे द्वारा अपनाये जाने वाले मूल्य हमारी संवेदना व समझ पर आधारित होते हैं । उनकी सापेक्षता देशकाल के संदर्भ में होती है। लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं है कि मूल्य और सामाजिक व्यवहार के बीच कोई तार्किक संगति नहीं होती बल्कि मूल्यों में परस्पर भी गहरी आंतरिक संगति होती है । जबकि निकोलाई हार्टमान जैसे विचारक मूल्यों की निरपेक्षता को स्वीकार करते हैं । यहां तक की वे उनकी शाश्वतता स्वीकार करते हैं जो मेरे विचार से उचित नहीं है । क्योंकि ऐसा मान लेने पर हर बदलती परिस्थिति में वे ही मूल्य अटल रहेंगे जिनकी सार्थकता भी खत्म हो चुकी होती है । जॉन डीवी कहते हैं, *''यह विचार प्रचलित है कि विभिन्न प्रकार के अध्ययन मूल्यों के सूचक होते हैं और शिक्षा का पाठ्यक्रम इस प्रकार निर्मित किया जाना चाहिए जिसमें विभिन्न प्रकार के अध्ययन शामिल हों ताकि अनेक प्रकार के स्वतंत्र मूल्यों की उपलब्धि हो सके।''* मूल्य पद समस्त व्यक्तित्व के विकास क्षेत्र को समेटता है। कुछ विशेष मूल्य हैं जो अनेक क्षमताओं के माध्यम से समस्त व्यक्तित्व को दर्शाते हैं । भावनात्मक क्षमताओं को प्रदर्शित करने वाले मूल्य साहस, आत्म विश्वास, प्रेम, समर्पण, शक्ति आदि। शारीरिक क्षमताएं व्यक्ति की सेहत, शक्ति, कार्य-क्षमता, अनुशासन के मूल्य से ज्ञात होती हैं । बौद्धिक क्षमताएं व्यक्ति की स्पष्टता, तार्किकता, गंभीरता, तटस्थता आदि के मूल्यों से प्रदर्शित होती है। नैतिक एवं आत्मिक क्षमताएं व्यक्ति में ईमानदारी निर्मलता, पवित्रता, न्यायप्रियता, निष्पक्षता के मूल्यों से प्रदर्शित होती हैं । सामाजिक क्षमताएं, विनम्रता, दयालुता, सेवा भाव, सहयोग एवं बन्धुत्व के मूल्यों से प्रदर्शित होती हैं।

मूल्य हमारे कर्मों को दिशा देते हैं। क्या करणीय है, क्या नहीं ? इसके निर्णय में खासी अच्छी भूमिका का निर्वाह करते हैं । मूल्यों का आपसी संबंध शुद्ध तार्किक नहीं होता । ये गणितीय अवधारणों की तरह नहीं होते । हमारे द्वारा अपनाये जाने वाले मूल्य हमारी संवेदना व समझ पर आधारित होते हैं । उनकी सापेक्षता देशकाल के संदर्भ में होती है। लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं है कि मूल्य और सामाजिक व्यवहार के बीच कोई तार्किक संगति नहीं होती बल्कि मूल्यों में परस्पर भी गहरी आंतरिक संगति होती है ।

1986 में शिक्षा की राष्ट्रीय नीति में इस बात पर चिन्ता प्रकट की गई कि आज महत्वपूर्ण आवश्यक मूल्यों का ह्रास हो रहा है जिससे समाज में अनिश्चितता, संदेह व अविश्वास की स्थिति उत्पन्न हो गई है । इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि पाठ्यक्रमों का पुर्नमूल्यांकन किया जाये ताकि शिक्षा को सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के आंतरीकरण हेतु एक महत्वपूर्ण व उपयोगी उपकरण के रूप में विकसित किया जा सके ।

हमारे संस्कृति बहुल समाज में शिक्षा वैश्विक मूल्यों को बढाने तथा जनता को एकता, समानता (समता), और सहिष्णुता को प्रेरित करने वाली दी जानी चाहिए । ऐसी मूल्य केन्द्रित शिक्षा धार्मिक कट्टरता, अंधविश्वास एवं भाग्यवादिता को खत्म करने में मदद करेगी।

मूल्य केन्द्रित शिक्षा को उसके सही मायनों में देखें तो उसका अर्थ इस प्रकार हो सकता है :

- प्रशिक्षुओं शिक्षकों में स्वयं तथा समाज के प्रति जागरूकता विकसित करे ।
- जीवन में सत्य, ईमानदारी, स्वयं में आस्था, स्वानुशासन चारित्रिक मूल्यों का विकास करे ।
- विस्तृत व निजी सोच और सकारात्मक सामाजिक दृष्टिकोण के लिए अवसर उपलब्ध करवाना ।
- बच्चों की आवश्यकताओं व भविष्य में उनको समाज के प्रति संवेदनशील बनाना।

इसके बावजूद विद्यालय में मूल्य-शिक्षण का कोई फॉर्मूला नहीं दिया जा सकता । शिक्षक की अपनी मूल्य-दृष्टि, बच्चों से उसका व्यवहार और बच्चों के परस्पर अन्तक्रिया की आधार भूत मूल्य-संरचना पर बहुत कुछ निर्भर करता है । ◆